उपन्यास की विकास यात्रा

उपन्यास अपेक्षाकृत नई साहित्यिक विधा है। इसमें सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को उभारने का प्रयास किया जाता है। इसमें सामान्य जीवन के द्वन्द्व, फैलाव और गति का समावेश अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में अधिक होता है। इस विधा का प्रारम्भ हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में हुआ। भारतेन्दु युग में ही ऐसी स्थिति बनने लगी थी कि लेखकों को एक नई विधा की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। दरअसल वे अपनी पूरी-पूरी बात खुलकर नहीं कह पा रहे थे। कविता, निबन्ध, नाटक, प्रहसन आदि साहित्य की अन्यान्य विधाएँ युगीन चेतना को पूरी तरह प्रस्तुत करने में असफल साबित हो रही थीं। ऐसी दशा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ध्यान उपन्यास विधा की तरफ गया। वे बंगला उपन्यासों से परिचित थे और उसी तर्ज़ पर हिन्दी में भी उपन्यास लेखन चाहते थे। स्वतन्त्र उपन्यासों की रचना न होने की स्थिति में कुछ बंगला उपन्यासों के अनुवाद के भी पक्षधर थे। उनके प्रयास से अनेक बंगला उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और कुछ उपन्यास हिन्दी में भी लिखे गए। वे खुद भी उपन्यास लिखना चाहते थे, पर शुरुआती पृष्ठ ही लिख सके। उन्होंने अपने उपन्यास का नाम रखा था – *एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती*। वैसे निर्विवाद तथ्य है कि हिन्दी में उपन्यास लेखन की परम्परा बंगला के प्रभाव से प्रारम्भ हुई। भारतेन्दु युग में ही उपन्यास लेखन की नींव रखी जा चुकी थी, पर उसे प्रेमचन्द युग में सही रूपाकार और व्यापकता मिली। प्रेमचन्द के लेखन के सम्बन्ध में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है – “अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव,रहन-सहन, आशा-आकांक्षा दु:ख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।” (*हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास*, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.212)

हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम को चार काल-खण्डों में विभाजित कर देखा जा सकता है –

1.
    1. प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास
    2. स्वतन्त्रता पूर्व के हिन्दी उपन्यास
    3. स्वातन्त्र्योत्तर युग के हिन्दी उपन्यास
    4. समकालीन उपन्यास लेखन की प्रवृत्तियाँ

1. **प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास**

प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास का कालखण्ड सन् 1877 से 1918 माना जा सकता है। सन् 1877 में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने *भाग्यवती*उपन्यास लिखा था। यह उपन्यास उपदेशात्मक है। यह अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास तो नहीं था, परन्तु इसमें विषय-वस्तु की नवीनता थी। इसीलिए इसे हिन्दी का पहला उपन्यास कहा गया है। हिन्दी उपन्यासों के प्रेरणास्रोत रहे बंगला उपन्यासों की भूमि बहुत उर्वर रही है। बंगला में सन् 1877 के पहले बहुत से उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। उनमें भवानीचरण बन्द्योपाध्याय का *नवबाबू विलास* (सन् 1825) और टेकचन्द ठाकुर (पियारीचन्द्र मित्रा) का *आलालेर घरेर दुलाल* (सन् 1857) बहुत लोकप्रिय हुए। बंगला के कई उपन्यासों का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। हिन्दी उपन्यासों की भूमि बंगला उपन्यासों के अनुवाद द्वारा भी समृद्ध हुई है। बंगला के अलावा अंग्रेजी उपन्यासों का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर पड़ा है। *परीक्षागुरू* (सन् 1882) पर तो अंग्रेजी का सीधा प्रभाव स्वीकार किया जाता है।

प्रेमचन्द पूर्व युग में साहित्यिक चेतना मुख्यत: दो प्रवृत्तियों में प्रचलित थी। एक प्रवृत्ति मनोरंजन की थी और दूसरी सामाजिक जागरण की। मनोरंजन का तत्त्व प्राय: हर युग के कथा साहित्य का अनिवार्य अंग है। इसीलिए अध्ययन की सुविधा के लिए किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा किया गया सामाजिक, ऐतिहासिक और घटनात्मक विभाजन ही उचित माना जाता है।

इस युग के पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी (सन् 1837-1881), लाला श्रीनिवास दास (सन् 1851-1857), बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधकृष्ण दास, लज्जाराम मेहता, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय और मन्नन द्विवेदी प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार हैं। पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी ने *भाग्यवती* (सन् 1877) लिखकर स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा दी थी। लाला श्रीनिवास दास ने *परीक्षागुरु* (सन् 1882) में यह सन्देश दिया कि जो बात सौ बार समझाने से समझ में नहीं आती, वह एक बार की परीक्षा से मन में बैठ जाती है और इसी वास्ते लोग परीक्षा को गुरु मानते हैं। इसी तरह राधाकृष्णदास ने *निस्सहाय हिन्दू* (सन् 1890) नामक उपन्यास सामाजिक समस्याओं और गोवध-निवारण की भावना से प्रेरित होकर लिखा है। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। उन्होंने कुल 65 उपन्यास लिखे हैं।

उन्होंने कई सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं। उनके उपन्यास *स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी* में पहली बार वेश्या जीवन के दर्द को उपन्यास का विषय बनाया गया है। उनका एक उपन्यास *पुनर्जन्म या सौतियाडाह* है। इसमें लेखक की यह सम्मति व्यक्त हुई है कि सौतिनों को सुशील और सुन्दरी का सा बर्ताव करना चाहिए और पुरुष को सज्जन सिंह की भाँति दक्षिण नायक सा आचरण करना चाहिए। यह उपन्यास उस समय की पुरुष मानसिकता और सामाजिक आचरण को दर्शाता है, जहाँ पुरुष का एक से अधिक स्त्रियों से सम्बन्ध रखना सर्वथा उचित हो। इस काल के उपन्यासों में यह झलक मिलती है कि स्त्रियों के लिए स्त्रीत्व का निर्वाह परमावश्यक माना जाता था। किशोरीलाल गोस्वामी के बारे में रामचन्द्र तिवारी का मानना है – "नव्यसमाज के प्रति आप न्याय नहीं कर सके हैं। फिर भी तत्कालीन समाज की एक प्रतिनिधि मनोवृत्ति को समझने के लिए आपके उपन्यासों का अध्ययन आवश्यक है। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासकारों में निर्विवाद रूप से आपका स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।" (*हिन्दी गद्य-साहित्य*, रामचन्द्र तिवारी, पृ.152)

इसी समय भुवनेश्वर मिश्र के *घराऊ घटना* (सन् 1894) और जैनेन्द्र किशोर के *गुलेनार* (सन् 1907) का प्रकाशन हुआ। इन उपन्यासों में कस्बों और ग्रामीण अंचलों में उगते हुए मध्यवर्ग और शहरों के तत्कालीन रईसों के जीवन की धडकनें सुनाई पड़ने लगी थीं।

इस युग में अच्छे ऐतिहासिक उपन्यासों का अभाव है। फिर भी किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, मथुराप्रसाद शर्मा, बलदेवप्रसाद मिश्र, ब्रजनन्दन सहाय और मिश्रबन्धुओं ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण काम किया है। सामाजिक उपन्यास लेखन की तरह ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में भी किशोरीलाल गोस्वामी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने *तारा वा क्षात्रकुल कमलिनी* (सन् 1902) के लेखन के लिए कर्नल टाड कृत *राजस्थान* और फ्रेंच यात्री बर्नियर के यात्रा विवरण से सहायता ली है। *लवंगलता और आदर्श बाला* (सन् 1904), *सुल्ताना रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल* (सन् 1904), *सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई* (सन् 1909) आदि उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

ब्रजनन्दन सहाय के *लालचीन* उपन्यास में तुर्की गुलामों के सरदार तुगलकचीन और दक्षिण के शासक गयासुद्दीन (1937 ई.) के संघर्ष की कहानी कही गई है। तुगलकचीन को ही उपन्यासकार ने लालचीन बना दिया है।

प्रेमचन्द-पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास से अधिक कल्पना, प्रेम, रहस्य और रोमांच है। ऐतिहासिक शोध और छान-बीन के अभाव में ये उपन्यास उत्तम कोटि के नहीं बन पाए हैं।

प्रेमचन्द-पूर्व युग में तीसरी कोटि घटना प्रधान तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की है। 'तिलस्मी-ऐयारी' उपन्यासों में बाबू देवकीनन्दन खत्री का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि *चन्द्रकान्ता* उपन्यास पढ़ने के लिए लोगों ने हिन्दी सीखी थी। *चन्द्रकान्ता* की प्रसिद्धि के बाद उन्होंने *चन्द्रकान्ता सन्तति* और *भूतनाथ* जैसे उपन्यास भी लिखे। इस क्षेत्र में हरेकृष्ण जौहर, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू देवकीनन्दन के पुत्र बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री ने भी अपने हाथ आजमाए। इनके अलावा देवीप्रसाद उपाध्याय, गुलाबदास, विश्वेश्वरप्रसाद वर्मा और रामलाल वर्मा आदि ने भी उपन्यास लेखन के छिटपुट प्रयत्न किए।

जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी ने सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। उन पर अंग्रेजी के सर आर्थर कानन डायल का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उन्होंने सन् 1900 में *जासूस* नामक मासिक पत्र निकाला। उन्होंने इस पत्र के लिए कई उपन्यास लिखे। *अद्भुत लाश* (सन् 1896), *गुप्तचर* (सन् 1899), *बेकसूर की फाँसी* (सन् 1900), *सरकटी लाश* (सन् 1900) आदि उनके कुछ प्रमुख उपन्यास हैं। उन्हें हिन्दी का 'आर्थर कानन डायल' कहा गया है। उनके अलावा रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, जयरामदास गुप्त, रामप्रसाद लाल आदि ने भी ऐसे कुछेक उपन्यास लिखे हैं।

प्रेमचन्द पूर्व युग में अनुवाद द्वारा भी हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया गया। इस युग में सर्वाधिक अनुवाद बंगला साहित्य से किया गया। उसके बाद मराठी, गुजराती, अंग्रेजी और उर्दू से भी कई उपन्यासों का अनुवाद किया गया। प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासों की विविधता ने प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों को ठोस आधार-भूमि प्रदान की। उसके बिना प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में विषयवस्तु की स्पष्टता, व्यापकता शिल्प की उत्कृष्टता सम्भव नहीं हो सकती थी।

1. **स्वतन्त्रता पूर्व के हिन्दी उपन्यास**

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्द युग की समय-सीमा सन् 1918 से सन् 1936 तक मानी जाती है। यह समय-सीमा छायावाद युग की भी है। हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द और उनके युग का बहुत महत्व है। प्रेमचन्द पहले ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने भारतीय जन-जीवन की समस्याओं को गहराई से समझा। उनके उपन्यास आम आदमी के दुख-दर्द की दास्तान हैं। उनके पहले उपन्यास में जन-जीवन की व्याप्ति नहीं थी। प्रेमचन्द पर आर्यसमाज और गांधीवाद का प्रभाव था। पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी वे भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। प्रेमचन्द मानवतावाद से भी प्रभावित थे। प्रेमचन्द ने आरम्भ में आदर्शवादी उपन्यासों की रचना की। कालांतर में उनका झुकाव यथार्थवाद की ओर हो गया। इस तरह उनके लेखन के लिए एक नया पद 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' बना। प्रेमचन्द ने अपने लेखन में जीवन के व्यापक फलक को सृजित किया है। *सेवासदन* (1918ई.), *प्रेमाश्रम* (1921ई.), *रंगभूमि* (1925 ई.), *कायाकल्प* (1926 ई.), *निर्मला* (1927 ई.), *गबन* (1931 ई.), *कर्मभूमि* (1932 ई.), *गोदान*(1936 ई.) और *मंगलसूत्र* (1936 ई.-अधूरा) आदि प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। प्रेमचन्द ने सीधी-सरल भाषा में लिखा है। उनका मानना है की उन्होंने आलोचकों के लिए नहीं बल्कि पाठकों के लिए लिखा है।

प्रेमचन्द से प्रभावित होकर उपन्यास लेखन में प्रवृत्त होने वाले रचनाकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, श्रीनाथ सिंह, शिवपूजन सहाय, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, चंडीप्रसाद 'हृदयेश' राजाराधिकारमणप्रसाद सिंह, सियारामशरण गुप्त आदि प्रमुख हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक (1891-1945 ई.) के दो उपन्यास *माँ* और *भिखारिणी* को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली है। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में शिवपूजन सहाय का एक मात्र उपन्यास *देहाती दुनिया* (1926 ई.) प्रसिद्ध है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' के उपन्यासों में भावपूर्ण आदर्शवादी शैली में मनुष्य की सद्वृत्तियों की महिमा अंकित की गई है। प्रेमचन्द की तरह ही राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह (1890 ई.-1971 ई.) और सियारामशरण गुप्त ने भी गांधीवादी दर्शन से प्रभावित होकर उपन्यासों की रचना की है।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्दोत्तर युग में दो पीढियाँ उपन्यास लेखन में सक्रिय रही हैं। एक पीढ़ी उन उपन्यासकारों की है, जिनका मानस संस्कार प्रेमचन्द युग में बना लेकिन उन्होंने बाद में

अपनी नई राह बना ली। दूसरी पीढ़ी उन उपन्यासकारों की है जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र में आई। उन उपन्यासकारों ने उपन्यास लेखन में नई सम्भावनाओं की ओर संकेत किया। रामचन्द्र तिवारी का मानना है कि पिछले कुछ वर्षों में उपन्यास लेखकों की एक तीसरी पीढ़ी भी तैयार हो गई। ये पीढियाँ मूल्य और मान्यता के स्तर पर एक-दूसरे से जुडी हुई हैं। अगर वर्गीकरण की बात की जाए तो सामान्यत: इन उपन्यासों को सामाजिक, मानवतावादी, स्वच्छन्दतावादी, प्रकृतवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक और आंचलिक वर्गों में रखा जा सकता है। वैसे इस वर्गीकरण के बावजूद कई ऐसे उपन्यास हैं जिनमें कई वर्गों की प्रवृत्तियाँ घुल-मिल गई हैं। इस वर्गीकरण के अलावा कई उपन्यासों में आधुनिकता और जनवाद को केन्द्र में रखा गया है।

डॉ. बच्चन सिंह ने सन् 60 के बाद से हिन्दी उपन्यासों में आधुनिकता और जनवादी धाराओं को प्रवाहित होता हुआ लक्षित किया है। उन्होंने आधुनिकतावादी धारा को 'प्रयोगवाद' का अगला कदम माना और जनवादी विचारधारा को प्रगतिवादी विचारधारा की अग्रिम कड़ी।' रामचन्द्र तिवारी ने किसी भी वर्गीकरण को सर्वथा उपयुक्त नहीं माना। इसीलिए उन्होंने इतिहास ग्रन्थों में सामान्य रूप से स्वीकृत वर्गीकरण के अनुसार ही प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के विश्लेषण की वकालत की है।

सामाजिक और मानवतावादी उपन्यासों में मानव की श्रेष्ठता की बात की जाती है। ऐसे उपन्यासों में उपन्यासकारों ने मनुष्य को उसकी दुर्बलताओं के बावजूद सहानुभूति प्रदान की है। प्रेमचन्द के साथ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सियारामशरण गुप्त, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, उदयशंकर भट्ट आदि का नाम उनमें प्रमुख है।

इस युग में अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यासों में विविध विषयों को सफलतापूर्वक कथानक का रूप दिया/ *बूँद और समुद्र* में नागर की औपन्यासिक शक्ति पूरी तरह उभर कर सामने आई है। *बूँद और समुद्र* के माध्यम से उन्होंने व्यक्ति और समाज की बात की है। उन्होंने *शतरंज और खिलाड़ी* जैसा ऐतिहासिक उपन्यास लिखा तो *सुहाग के नुपूर*, *नाच्यौ बहुत गोपाल* और *अग्निगर्भा* जैसे सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित उपन्यास भी लिखे। विष्णु प्रभाकर को नाटककार, कहानी-लेखक और जीवनीकार के रूप में अधिक सफलता मिली है। उनके उपन्यासों में मानवतावादी स्वर सुनाई पड़ता है। उनके उपन्यासों

में *अर्धनारीश्वर* को अधिक सफलता मिली। इस उपन्यास में समाज के सभी वर्गों की स्त्रियों पर होने वाले बलात्कार और अन्य अत्याचारों पर लेखनी चलाई गई है।

इस युग के उदयशंकर भट्ट ने मछुआरों के जीवन पर *सागर, लहरें और मनुष्य* लिखकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की है।

स्वच्छन्दतावादी उपन्यास लेखकों में वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राधिका रमणप्रसाद सिंह, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'अज्ञेय', मन्मथनाथ गुप्त, रामेश्वर शुक्ल, 'अंचल', लक्ष्मीनारायण लाल और धर्मवीर भारती आदि का नाम आता है। इनके अलावा हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास *बाणभट्ट की आत्मकथा* (सन् 1946) और मार्क्सवादी लेखकों यशपाल और राहुल सांकृत्यायन में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। रामचन्द्र तिवारी के अनुसार अपने सभी उपन्यासों में द्विवेदी जी ने परम्परागत सामाजिक बन्धनों को तोड़कर स्वच्छन्द मानवतावादी जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा करके अपने रोमानी झुकाव का परिचय दिया है।

प्रकृतवादी उपन्यासों के लेखन में पाण्डेय बेचन शर्मा का नाम अग्रगण्य है। ऋषभचरण जैन का नाम भी इसी श्रेणी के उपन्यासकारों में है। प्रकृतवादी उपन्यासों के जनक जोला (zola) हैं। उन्होंने कहा था कि लेखकों का धर्म है कि वे जीवन के गन्दे से गन्दे और कुरूप चित्र खींचे।

व्यक्तिवादी उपन्यासकारों ने व्यक्ति की सत्ता और अस्तित्व को समाज से पहले स्वीकार किया है। इस दृष्टि से भगवतीचरण वर्मा (*चित्रलेखा, टेढ़े मेढ़े रास्ते, सबहिं नचावत रामगोसाई, प्रश्न और मरीचिका*), उपेन्द्रनाथ 'अश्क (*गिरती दीवारें, गर्मराख, शहर में घूमता आईना, एक नन्हीं कन्दील, सितारों के खेल* में), भगवतीप्रसाद वाजपेयी (*पतिता की साधना*), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' और उषा देवी मित्रा आदि उल्लेखनीय हैं।

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, डॉ. देवराज (भीतर का घाव) अग्रणी हैं। इन उपन्यासकारों के उपन्यासों में मुख्य रूप से मनोविश्लेषण के आधार पर पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्व का चित्रण किया गया है।

सामाजिक यथार्थवादी (प्रगतिवादी) उपन्यासकारों में नागार्जुन, यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृतराय आदि प्रमुख हैं।

1. **स्वातन्त्र्योत्तर युग के हिन्दी उपन्यास**

स्वातन्त्र्योत्तर काल में ग्राम कथाकारों का नया वर्ग खड़ा हुआ। आंचलिक कथाकारों ने अंचल विशेष को नायक बनाकर उपन्यासों में प्रस्तुत किया। ऐसे कथाकारों में पहला नाम फणीश्वरनाथ रेणु का है। उनका पहला उपन्यास *मैला आँचल*सन् 1954 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज कस्बे को केन्द्र में रखा गया है। *परती परिकथा* उनका दूसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। आंचलिक उपन्यासकारों के साथ-साथ उपन्यासकारों का एक ऐसा वर्ग भी है जो अपने को ग्राम कथाकार कहलाना ज्यादा पसन्द करते हैं। अपने आप को आंचलिक शब्द की सीमा में सिमटा हुआ नहीं मानते। उनका मानना है कि हिन्दी में ग्राम कथा की समृद्ध परम्परा है जिसके शिखर प्रेमचन्द हैं। ये उपन्यासकार खुद को प्रेमचन्द की परम्परा का कथाकार कहलाना अधिक पसन्द करते हैं। इन ग्राम कथाकारों में शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, विवेकी राय आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों में भीष्म साहनी, राही मासूम रज़ा, बदीउज्जमाँ, मंजूर एहतेशाम का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भारत विभाजन के समय की स्थितियों-परिस्थितियों को कथ्य बनाकर लिखा गया भीष्म साहनी का *तमस*, राही मासूम रज़ा का *आधा गाँव*, बदीउज्जमाँ का *छाको की वापसी* विशिष्ट उपन्यास हैं। *आधा गाँव* (सन् 1968) में गाजीपुर के एक मुस्लिम बहुल गाँव गंगौली की कथा कही गई है। इस उपन्यास में राही मासूम रज़ा के इस दर्द को अभिव्यक्ति मिली है कि लोग गंगौली के वासी होने से अधिक सुन्नी और शिया होते जा रहे हैं। गंगौली को भारत का प्रतीक मानकर यह कहा जा सकता है कि लोग भरतीय होने से अधिक हिन्दू-मुसलमान होते जा रहे हैं।

विभाजन को आधार बनाकर सन् 1958 में यशपाल का *झूठा सच* (दो खण्डों में) प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भारत के विभाजन की पूर्वपीठिका, विभाजन की विभीषिका और उसके उत्तर प्रभाव का बहुत विषद चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में लेखक ने बँटवारे के समय, उसके पूर्व और पश्चात की साम्प्रदायिक विभीषिका में जलते हुए भारत और पाकिस्तान का मार्मिक चित्र खींचा है।

भारत विभाजन को मुख्य विषय बनाकर भीष्म साहनी ने *तमस* की रचना की। इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1973 में हुआ। इस उपन्यास में भीष्म साहनी ने स्वाधीनता-प्राप्ति से कुछ समय पूर्व को कथानक का आधार बनाया। इसमें साम्प्रदायिक विभीषिका और उसके प्रभावों को दिखलाया गया है। लेखक ने बखूबी दिखलाया है कि अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालने के लिए षड्यन्त्र किए हैं। राजनीतिक चेतना और उससे उत्पन्न सामाजिक विसंगतियाँ, दोनों को रचना (उपन्यास) का विषय बनाया गया है।

इसी काल में कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्बदा आदि लेखिकाएँ भी उपन्यास लेखन में सक्रिय हुई। कृष्णा सोबती का *जिन्दगीनामा* विशेष प्रसिद्ध है। इस उपन्यास में पंजाब के एक गाँव को आधार बनाकर पूरे गाँव का जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है। स्वातन्त्र्योत्तर कालीन हिन्दी उपन्यासों में उस दौर तक का सर्वथा अनूठा उपन्यास *मछली मरी हुई* (राजकमल चौधरी) प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास लिखा तो गया सन् 1960 में ही, पर प्रकाशित हुआ सन् 1966 में। स्त्री समलैंगिकता के सहारे उस दौर के अर्थतन्त्र के व्यूह और दैहिक राजनीति को उजागर करने का यह बहुत ही शानदार प्रयास किया गया। बाद के दिनों में इस सामाजिक वृत्तियों पर आधारित कोई उपन्यास नहीं लिखा गया। हिन्दी उपन्यास के विकासक्रम में यह अनूठा कदम था। राजकमल चौधरी ने हिन्दी में इसके अलावा और भी सात उपन्यास लिखे– *अग्निस्थान*, *देहगाथा*, *शहर या शहर नहीं था*, *बीस रानियों के बाइस्कोप*, *एक अनार एक बीमार*, *ताश के पत्तों का शहर*, *नदी बहती थी* आदि। प्रकृतवाद का अनुपम उदाहरण है राजकमल चौधरी का उपन्यास लेखन।

मन्नू भण्डारी ने हिन्दी कथा साहित्य को नारी जीवन की तत्कालीन जीवन्त समस्याओं से जोड़ा। *आपका बंटी* (सन् 1971) उपन्यास लिखकर लेखिका ने तलाकशुदा दम्पत्ति के बच्चों पर पड़ने वाले प्रभाव का मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा है। मन्नू भंडारी के एक अन्य उपन्यास *महाभोज* (सन् 1979) ने बहुत ख्याति अर्जित की। इस उपन्यास के लेखन से यह संकेत मिलता है कि लेखिकाएँ अब घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर समाज के व्यापक सन्दर्भों और जनहित की बात करने लगी हैं।

इस काल में उषा प्रियम्बदा ने भी अपने लेखन से पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट किया। उनके लेखन के केन्द्र में आधुनिकता के सारे तत्त्व – अकेलापन, संत्रास, ऊब, घुटन, अजनबीपन विद्यमान हैं। *पचपन खम्भे लाल दीवारें* (सन् 1961), *रुकोगी नहीं राधिका* (सन् 1967) में ये सारे तत्त्व किसी न किसी रूप में कथा नायिका के व्यक्तित्व के अंग बने हुए हैं।

इस कालखण्ड में काशीनाथ सिंह ने *अपना मोर्चा* (सन् 1972), शिवानी ने *चौदह फेरे* (सन् 1965), *कृष्णकली* (सन् 1968), मृदुला गर्ग ने *चितकोबरा* (सन् 1979) जैसे उपन्यास लिखकर अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज की। *अपना मोर्चा* में सन् 1967 के भाषा-आन्दोलन को केन्द्र में रखकर वर्तमान विश्वविद्यालयी शिक्षा के पूरे ढाँचे का खोखलापन उजागर किया गया है। *काशी का अस्सी* उनका उल्लेखनीय उपन्यास है। इस उपन्यास के केन्द्र में काशी का अस्सी मोहल्ला है। शिवानी के उपन्यासों में मनोरंजक कथा, रहस्य, रोमांच, भावुकता, स्वच्छन्द कल्पना आदि का पुट मिलता है। मृदुला गर्ग के उपन्यासों में अभिजातवर्गीय नारी के स्वातन्त्र्य, प्रेम विवाह, वैवाहिक जीवन की एकरसता, ऊब, ताजगी की तलाश में पर-पुरुष की ओर झुकाव, प्रेम की अनुभूति के सूक्ष्म विश्लेषण का पुट मिलता है।

1. **समकालीन उपन्यास लेखन की प्रवृत्तियाँ**

सन् 1990 के आस-पास भारतीय समाज में नवीन हलचलें प्रारम्भ हुईं। सन् 1992 में मन्दिर-मस्जिद का विवाद उठा और बाबरी मस्जिद तोड़ी गई। समाज में एक तरफ साम्प्रदायिक शक्तियाँ सक्रिय थीं, तो दूसरी तरफ लोग जातियों में भी लामबंद होने लगे थे। मण्डल-कमण्डल और मन्दिर-मस्जिद विवाद ने ऐसी सामाजिक हलचल को जन्म दिया जहाँ से उपन्यासकारों को उपन्यास लेखन की नई खुराक मिली। दूधनाथ सिंह (*आखिरी कलाम*), संजीव (*त्रिशूल*), अब्दुल बिस्मिल्लाह (*मुखड़ा क्या देखे*), असग़र वजाहत (*सात आसमान, कैसी आगि लगाई*), मैत्रेयी पुष्पा (*अल्मा कबूतरी*), चित्रा मुद्‌गल (*आंवा*), मृदुला गर्ग (*इदन्नम*), गीतांजलि श्री (*माई*), नासिरा शर्मा (*जिन्दा मुहावरे*), गोविन्द मिश्र आदि इस काल खण्ड के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

इसी समय दलित, स्त्री, आदिवासी और थर्ड जेण्डर (third gender) विमर्श साहित्य में अपनी जगह बनाने लगे। कहा जाता है कि सन् 1970 में महाराष्ट्र के दलित पैन्थर ने 'दलित' शब्द का प्रचार किया। सबसे पहले सन् 1960 के आस-पास मराठी भाषा में दलित लेखन शुरू हुआ। मराठी दलित साहित्य आम्बेडकर की विचारधारा पर आधारित है। हिन्दी में दलित लेखन की शुरुआत सन् 1980 के आस-पास हुई। दलित साहित्य में आत्मकथाएँ, कहानियाँ और कविताएँ अधिक लिखी जा रही हैं। उपन्यास के क्षेत्र में दलित साहित्य अभी तक कोई उल्लेखनीय कृति नहीं दे सका है। तुलसीराम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय,

श्योराजसिंह बेचैन, जयप्रकाश कर्दम, अजय नावरिया, कँवल भारती आदि हिन्दी के प्रसिद्ध दलित साहित्यकार हैं।

स्त्री विमर्श में स्त्री अस्मिता और उसकी पहचान की बात की गई है। यद्यपि कई बार दलित विमर्श की तरह स्त्री विमर्श में भी यह बात उठती है कि स्त्री लेखन अपनी पूरी शक्ति व तेजस्विता के साथ स्त्री रचनाओं की लेखनी से ही किया जा सकता है, फिर भी कई रचनाएँ पुरुष रचनाकारों द्वारा भी सृजित की गईं, जिनमें स्त्री प्रश्नों का मुद्दा उठाया गया है। इस क्षेत्र में कई उपन्यास पौराणिक विषय को आधुनिक सन्दर्भ देते हुए लिखे गए तो कई आधुनिक विषय को भिन्न-भिन्न स्वरूप देते हुए। समकालीन समय में काशीनाथ सिंह, मंजूर एहतेशाम, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, विनोदकुमार शुक्ल, मनोहरश्याम जोशी, संजीव, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी, जया जादवानी, मधु कांकरिया आदि उपन्यास लेखन में सक्रिय हैं।

आजकल किन्नर विमर्श भी सामने आ रहा है। किन्नरों की समस्या को केन्द्र में रखकर कई उपन्यास लिखे गए हैं। इन उपन्यासों में किन्नरों की सामाजिक समस्याओं और उनकी मनोभूमि का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इसमें प्रदीप सौरभ की *तीसरी ताली*, नीरजा माधव की *यमदीप*, खुशवन्त सिंह की *दिल्ली*, महेंद्र भीष्म की *किन्नर कथा* और निर्मला भुराड़िया की *गुलाम मण्डी* प्रसिद्ध है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य आदिवासी विमर्श को भी अपने केन्द्र में रखता है। इन उपन्यासों में आदिवासियों का जंगल-जमीन से जुड़ाव, उन्हें जंगल-जमीन से दूर करने के सरकारी पैतरों और उनकी अस्मिता से जुड़े प्रश्न उठाए गए हैं। इन उपन्यासों में विनोद कुमार का *समर शेष है*, रणेन्द्र का *ग्लोबल गाँव का देवता* और *गायब होता देश* आदि उल्लेखनीय हैं।

1. **निष्कर्ष**

हिन्दी उपन्यास साहित्य आधुनिक युग की देन है। आधुनिक युग में ही शुरू होकर उपन्यास साहित्य ने जिस ऊँचाई को प्राप्त किया है, अन्य गद्य विधाओं ने नहीं। इसका सीधा-सा कारण है कि उपन्यास में रचनाकार को अपनी बात कहने का अवकाश मिलता है।

सामाजिक हलचलों के साथ चलने वाली गद्य की यह अनोखी विधा है। आज यह नए-नए रूपों में पुष्पित-पल्लवित हो रही है।